www.shodhpith.com ISSN (Online): 3049-3331

Shodhpith
International Multidisciplinary
Research Journal
(International Open Access, Peer-reviewed & Refereed Journal)
(Multidisciplinary, Bimonthly, Multilanguage)
Volume: 1 Issue: 3 May-June 2025

सत्याग्रह और स्वतंत्रता आंदोलनः वैचारिक प्रेरणा और सामाजिक प्रभाव

डॉ0 राजपाल सिंह

एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, सी.आर.एम. जाट कॉलेज, हिसार

भारत-भूमि पर भी ऐसे अनेक महापुरुषों का जन्म हुआ है, इनमें से एक हैं- महात्मा गांधी। जिन्होंने मोहनदास गांधी के रूप में अपना जीवन आरम्भ कर जीवन, समाज एवं सत्ता की समस्त चुनौतियों से लड़ते हुए 'कर्मयोगी' का स्तर प्राप्त किया। इसके बाद आधुनिक युग में अहिंसा के माध्यम से सत्याग्रह का एक ऐसा विरला उदाहरण समस्त विश्व के समक्ष प्रस्तुत किया जिसने उन्हें 'महात्मा' की पदवी दिलवाई और जन-जन के हृदय में वास करने वाले सम्पूर्ण राष्ट्र को अभिभावक के समान स्वाधीनता के पथ पर एकजुट करने वाले युगपुरुष भी बने। संसार विकार है, इसमें विरोध सदा उपस्थित रहा है और रहेगा, बल्कि यह कहना उपयुक्त होगा कि समय-समय पर संसार की पुनरावृति एवं पुनर्सृजन का कार्य ही विरोध करता है। इसी कारण विश्व में अनेकों सत्ताओं को बदलते हुए एवं अन्याय के विरोध में स्वर उठते हुए देखा गया है। इन गतिविधियों में से अधिकांश विरोध हिंसक एवं रक्त रंजित ही हैं। भारत में भी ब्रिटिश सत्ता के खिलाफ अनेकों क्रान्तिकारियों ने अपने प्राणों की बलि दी है। सभी ने अप. ने-अपने चिंतन के अनुसार मातृभूमि को गुलामी की जंजीरों से बाहर निकालने का प्रयास किया था। ब्रिटिश सत्ता द्वारा किये जा रहे दमनकारी कार्यो एवं हिंसा का प्रत्युत्तर अनेक भारतीय युवाओं ने हिंसा के माध्यम से भी दिया और कुछ ने शांतिपूर्ण आन्दोलनों के द्वारा विरोध किया। किन्तु इनमें से एक भी उपाय ब्रिटिश सत्ता को विचलित करने में कारगर साबित नहीं हो सका था। इसी समय भारतीय राजनीति में महात्मा गांधी का पदार्पण हुआ जिसने स्वतंत्रता आन्दोलन की दिषा एवं दषा दोनों ही बदल कर रख दी। गांधी द्वारा विरोध हेतु अपनाया गया मार्ग पृथक था। गांधी ने मानव सभ्यता को विरोध का वह मार्ग दिखाया जिस पर रक्त-रंजन का कोई ध्येय ही नहीं था। ऐसा मार्ग जिस पर नैतिक बल के अभाव में कतई नहीं चला जा सकता था। ऐसा मार्ग जिसमें पथिक के भीतर धैर्य, साहस, इच्छाशक्ति एवं अन्याय का विरोध करने के गुण का होना अनिवार्य था। वह मार्ग था अहिंसक सत्याग्रह।

सत्याग्रह का अर्थ है आत्मबल द्वारा सत्य पर अडिग रहना। सत्याग्रह वास्तव में वह युक्ति है जिसमें हिंसा को अहिंसा के द्वारा और असत्य को सत्य के द्वारा विजयी किया जाता है। यह नैतिक बल पर आधारित विरोध का वह मार्ग है जिसमें धैर्यवान होकर, कष्ट सहकर भी अहिंसात्मक एवं उचित माध्यमों द्वारा अन्यायी पक्ष का हृदय परिवर्तन करना है। सत्यतः यह आत्मबल है, और आत्मबल ही महाबल है। निर्बल तो क्या कोई साधारण बल वाला पुरुष भी सत्याग्रह नहीं कर सकता। यदि मनुश्य में तनिक भी निर्बलता हुई तो शान्ति के समय चाहे जैसा सत्याग्रही रहा हो, पर समय आने पर वह दुराग्रही अवश्य हो जायेगा। सत्याग्रह को सामान्यतः चार प्रकारों में विभाजित किया गया है- व्यक्तिगत सत्याग्रह, सामाजिक सत्याग्रह, राष्ट्रीय सत्याग्रह एवं धार्मिक सत्याग्रह।[1]

वास्तव में गांधी ने सत्याग्रह के आरम्भिक प्रयोग दक्षिण अफ्रीका में बीस वर्ष तक रहकर किये। दक्षिण अफ्रीका गये भारतीय मजदूरों तथा उनके बाद जाने वाले भारतीय व्यापारियों को मतदान का अधिकार नहीं था। उन्हें पंजीकरण कर तथा व्यक्तिगत कर देना पड़ता था। अफ्रीक तथा एशिया के काले लोगों को सभी को नौ बजे घर से निकलने का अधिकार नहीं था और न ही वे सार्वजनिक फुटपाथों का प्रयोग कर सकते थे। ये लोग गोरे लोगों की सड़कों पर आ-जा नहीं सकते थे। सन् 1907 में बने 'ट्रांसवाल प्रवासी रजिस्ट्रेशन कानून' के अनुसार भारतीयों को पुलिस

में अपने नाम की रजिस्ट्री करानी पड़ती थी और अंगूठे का निशान लगाना पड़ता था। यह कानून भारतवासियों के आत्मसम्मान पर चोट करता था। इसका विरोध करने का निश्चय गांधी ने किया। शांतिपूर्ण अहिंसात्मक सत्याग्रह के द्वारा इस कानून का विरोध करने के लिए तीन हजार भारतीयों ने एक विशाल सभा में शपथ ग्रहण की कि 'हम कागज पर अंगूठे की छाप नहीं लगायेंगे और न ही पंजीकरण देंगे।'[2] सरकार ने अपने स्वभावानुरूप दमनकारी प्रयास आरम्भ कर दिये। गांधी सहित अनेक प्रदर्शनकारियों को गिरफ्तार कर लिया गया। किन्तु गांधी अपने संकल्प से विचलित नहीं हुए, तब मजबूर होकर दक्षिण अफ्रीका के गवर्नर जनरल स्मट्स को सत्याग्रही लोगों से समझौता करना पड़ा। इसके अनुसार रजिस्ट्रेशन कानून रद्द किया गया और भारतवासी स्वेच्छा से अपना पंजीकरण करने हेतु अधिंत किये गये। किन्तु कालान्तर में सरकार ने इसका पालन नहीं किया और आश्वासन के बाद भी रजिस्ट्रेशन कानून को रद्द नहीं किया गया। ऐसा होने पर गांधी के नेतृत्व में शांतिपूर्ण एवं अहिंसक आंदालेन पुनः आरम्भ कर दिया गया। 16 सितम्बर 1908 को जोन्हासबर्ग में बड़ी होली का आयोजन किया गया, जिसमें जनरल स्मट्स के साथ किए गए समझौते के अनुसार स्वेच्छा से कराई गई रजिस्ट्रियों के दो हजार प्रमाण-पत्र जलाए गए। सरकार ने भी इस धुंआधार आंदोलन को दबाने में कोई कसर उठाकर नहीं रखी। अनेक लोग बन्दी बनाये गए और जेल में उन्हें भारी यातनाएं दी गईं। इसी बीच दक्षिण अफ्रीका के हाई कोर्ट ने एक फैसला दिया जिससे प्रवासी भारतीयों के वैवाहिक सम्बन्ध नाजायज हो गये। क्योंकि वैवाहिक सम्बन्ध दक्षिण अफ्रीका के कानून के अनुसार नहीं थे। भारतीय पद्धति से किए गए विवाह को मान्यता नहीं दी गई। इससे भारतीय महिलाओं के अंतःकरण को भारी चोट पहुंची। अब महिलाओं ने भी सत्याग्रह का मार्ग अपना लिया। फोनिक्स पार्क में महिलाओं ने कानून तोड़ा और सत्याग्रह में स्वयं को सम्मिलित कर लिया। सरकार द्वारा उन्हें भी बन्दी बना लिया और कठोर यातनाएं दीं। सत्याग्रह के संचालक गांधी एवं पोलक को भी बन्दी बनाया गया था। इस गिरफ्तारी के विरोध में खानों में काम करने वाले मजदूरों ने भी हड़ताल करना आरम्भ कर दिया। जेलों में दी जा रही यातनाओं को सत्याग्रहियों ने जिस प्रकार से सहा उससे सरकार भी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकी। अंततः सरकार ने भारतीयों की सभी समस्याओं पर विचार करने के लिए आयोग गठन करने की स्वीौति प्रदान की। सरकार ने गांधी एवं पोलक सहित सभी सत्याग्रहियों को रिहा कर दिया। साथ ही तीन पौण्ड वाले प्रवेश कर को भी समाप्त कर दिया गया थ एवं हिन्दू तथा मुसलमानों के अपने-अपने रीति रिवाजों से हुए विवाहों को भी कानूनी मान्यता प्रदान कर दी गई थी। इसके अतिरिक्त अधिवास के प्रमाण पत्र को ही नागरिकता का अंतिम प्रमाण-पत्र मान लिया गया था।[3]

इस प्रकार गांधी ने सत्याग्रह का आयोजन करके यह सिद्ध कर दिया कि सत्ता, समाज अथवा स्वयं में परिवर्तन केवल शस्त्रबल से ही संभव नहीं है बल्कि आत्मबल की शक्ति द्वारा भी यह कार्य अधिक अच्छे तरीके से किया जा सकता है। इसे अधिक स्पष्ट करने के लिए गांधी ने कहा कि 'डेनियल पर्शियन कानून की अवहेलना की, क्योंकि वे उनकी अंतरात्मा के विरुद्ध थे। इस अवज्ञा के लिए उन्होंने कष्ट सहन किये।[4] जब गांधी ने सत्याग्रह के बल पर अफ्रीका में भारतीयों का अधिकार दिलवाये तो इसे लोग समसामयिक इंग्लैण्ड एवं अफ्रीका में प्रचलित 'निष्क्रिय प्रतिरोध' के समानार्थक मानने लगे। परन्तु ये दोनों ही पूर्णतः भिन्न प्रक्रियाएं थीं। गांधी का कहना था कि जिस प्रकार उत्तरी ध्रुव और दक्षिणी ध्रुव दोनों ही भिन्न हैं उसी प्रकार सत्याग्रह और निष्क्रिय प्रतिरोध परस्पर भिन्न हैं।[5] सत्याग्रह के माध्यम से असहयोग एवं सविनय अवज्ञा जैसे क्रियाएं, शस्त्रबल और हिंसा के प्रयोग में की जाने वाली क्रियाओं से अधिक शक्तिषाली एवं सक्रिय होती हैं, अतः सत्याग्रह को निष्क्रिय कहना भूल है। यह सक्रियता की अधिक गहन अवस्था का प्रतिनिधत्व करता है। इसके अतिरिक्त निष्क्रिय प्रतिरोध में उपुर्यक्त समय आने पर शस्त्रबल का प्रयोग कर हिंसा की जा सकती है, जबकि सत्याग्रह में सही समय पर भी यह कार्य वर्जित है।[6]

गांधी और कस्तूरबा 9 जनवरी 1915 को दक्षिण अफ्रीका से मुम्बई आये। एक या दो दिन बाद ही मुम्बई के पत्रकारों के सम्मुख उन्होंने कहा कि ''मैं शेष जीवन भारत में ही बिताने वाला हूं और मातृभूमि की सेवा करने वाला हूं।'[7] गांधी का वास्तविक वैशिष्ट्य बीस वर्ष तक दक्षिण अफ्रीका में चलाये गये सत्याग्रह आन्दोलन के सिद्धान्त और व्यवहार के प्रणेता के रूप में था। भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन एवं राजनीति में प्रवेश करने पर गांधी ने अपने दक्षिण अफ्रीका के अनुभवों के आधार पर ही कार्य करना प्रारम्भ किया। वे समझते थे कि भारत की भूखी और निरक्षर जनता को राजनीतिक संघर्ष के लिए प्रेरित करना अत्यंत कठिन है। गांधी के लिए खाद्य समस्या को सुलझाना या निर्धनता को दूर करना दूरूह कार्य था। अतः उन्होंने तत्कालीन परिस्थितियों में प्रत्येक व्यक्ति में आत्मविश्वास जगाना सर्वाधिक महत्वपूर्ण समझा। इस हेतु उन्होंने सत्याग्रह की अन्य शाखओं के माध्यम से भारतीय जनमानस को एकजुट करने का कार्य आरम्भ किया और स्वयं उनका नेतृत्व करते हुए आत्मबल की महत्ता को समझाया। इस कार्य हेतु उन्होने भारतीय जनता का असहयोग, सविनय अवज्ञा, उपवास, अहिंसात्मक धरना एवं बहिष्कार जैसे आत्मबल से बद्ध मार्गो से परिचय करवाया। सन 1915 में भारत आते ही उन्होंने गोपाल ेष्ण गोखले के परामर्श को स्वीकार करके

'एक वर्ष तक भारत भ्रमण करके स्वयं अध्ययन कर अपने कार्य की दिषा का निर्धारण करने का विचार किया।''[8]

गांधी ने भारत में सत्याग्रह का प्रथम प्रयोग चम्पारन में किया। चम्पारन के किसान नील बागान मालिकों तथा अंग्रेजों के द्वारा अत्यधिक शोषित अवस्था में थे। किसानों को अपनी जमीन के 3/20 भाग पर नील की खेती करनी पड़ती थी और उपज अंग्रेजों को मनमाने दामों पर बेचनी पड़ती थी। अंग्रेज अफसरों का पर्वतीय स्थलों पर हवाखोरी का सारा खर्च किसानों को उठाना पड़ता था, जिसे 'पहाड़ी कर' कहा जाता था। उनकी आज्ञा का पालन न करने पर अनेक प्रकार की यातनाएं दी जाती थीं। इस स्थिति के विरुद्ध गांधी ने नेतृत्व संभाला और वे डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, मजरुल हक, जेबी ेंपलानी तथा महादेव देसाई के साथ अप्रैल 1917 को चम्पारन जिले के मुख्य कस्बा मोतिहर पहुंचे। जब वे गांवों की ओर जाने लगे तो सरकार ने उन्हें जिलो छोड़ने का आदेश दिया, परन्तु गांधी गिरफ्तारी देने को तैयार हो गये। इससे सरकार को अपना आदेश वापस लेना पड़ा और किसानों की समस्या के समाधान के लिए एक कमीशन की स्थापना की। किसानों की ओर से गांधी कमीशन के सदस्य थे। अंत में कमीशन के निर्णय के अनुसार जबरन खेती करवाना तथा तीन कठिया कर लेना बन्द कर दिया गया। किसानों की यह भारी विजय थी। चम्पारण के अतिरिक्त खेड़ा सत्याग्रह 1918, अहमदाबाद की कपड़ा मिल की हड़ताल 1918 के माध्यम से असहयोग और आत्मदान के मार्ग से प्रष्नों को हल करने की अपनी कल्पना को ठोस रूप देकर उनका परीक्षण एवं मूल्यांकन करने का अवसर उन्हें प्राप्त हुआ।

असहयोग से तात्पर्य यह है कि सरकार यदि जनता की उम्मीदों के अनुसार कार्य नहीं करती है तो जनता के कष्टों व षिकायतों को दूर करने का प्रयास नहीं करती, या जनता के अनुसार वह सरकार भ्रष्टाचार में पूर्णत: लिप्त हो चुकी है तो उसके साथ जनता को किसी भी प्रकार का सहयोग नहीं करना चाहिए। क्योंकि बुराई करने वाला व्यक्ति कभी भी बुराई सहने वाले व्यक्ति के सहयोग के बिना सफल नहीं हो सकता है। असहयोग का वास्तविक उद्देश्य है अन्यायी सरकार से स्वयं को मुक्त कर पवित्र करना और उससे सहयोग समाप्त कर लेना।[9] 1919-20 में गांधी ने भारतीयों के सामने ब्रिटिश सरकार के कुेंत्यों के विरुद्ध असहयोग का कार्यक्रम प्रस्तुत किया और साथ ही असहयोग आन्दोलन का संचालन भी किया। बी. एम. टोंक के अनुसार 'भारतीय स्वतन्त्रता संघर्ष के इतिहास में असहयोग आन्दोलन एक महत्वपूर्ण उपकथा है। भारतीय जन-जागरण में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका रही है।'[10] वास्तव में असहयोग सत्याग्रह की गतिषील अवस्था का नाम है। असहयोग के पीछे मूल भावना है सभी प्रकार के राजनैतिक तथा सामाजिक सम्बन्धों का आपसी सहयोग पर होना। यदि विशेष प्रकार की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक अन्याय तथा शोषण को प्रश्रय देती है, तो उसके उन्मूलन का सबसे सरल तथा मौलिक तरीका है- असहयोग के आधार पर पुराने सम्बन्धों को ध्वस्त करना और नयी व्यवस्था में सहयोग देना।[11] प्रथम महायुद्ध के बाद भारतीयों पर होने वाले अत्याचारों और युद्धकालीन वायदों की अवहेलना ने गांधी को क्रांतिकारी सत्याग्रही बना दिया।

प्रथम महायुद्ध में भारतीयों ने अपनी आर्थिक कठिनाइयों के उपरान्त भी अंग्रेजों की पूर्ण सहायता की थी, क्योंकि उन्हें अंग्रेजों की न्यायप्रियता पर विश्वास था। साथ ही अंग्रेजों ने भी यह वचन दिया था कि युद्ध में विजयी होने के बाद वे भारतीयों को स्वशासन दे देंगे। 1917 में मांटेग्यू ने कहा था कि 'ब्रिटिश सरकार की नीति है-भारतीयों को धीरे-धीरे प्रशासन के प्रत्येक विभाग में उत्तरोत्तर अधिक संख्या में शामिल करना, स्वशासन संबंधी संस्थाओं का क्रमिक विकास करना ताकि भारत में ब्रिटिश सरकार के अंग के रूप में धीरे-धीरे उत्तरदायी सरकार की स्थापना हो सके।''[12] इन घोषणाओं में भारतीयों को अपनी स्वतंत्रता की आशा की किरण दिखाई दी, किंतु बाद के भारतीयों की आशाओं पर आघात ही किया गया। प्रारम्भ में गांधी भी ब्रिटेन के समर्थकों में से थे। प्रथम महायुद्ध में उन्होंने नैतिक आधार पर भारतीयों से अंग्रेजों की सहायता करने की अपील की थी। किन्तु युद्ध के बाद अंग्रेजों द्वारा युद्ध कालीन प्रतिज्ञाओं की अवहेलना करने तथा दमन का मार्ग अपनाने की प्रक्रिया ने गांधी को क्रांतिकारी बना दिया और वे अहिंसात्मक असहयोग के सर्वप्रथम पक्षधर बन गए।

1919 के रॉलेट बिलों को जनता ने 'काला कानून' नाम दे दिया था, क्योंकि इनका उद्देश्य जनता की स्वतन्त्रता का हनन करना था और इनसे सरकारी कर्मचारियों को किसी भी न्यायोचित आन्दोलन को कुचलने की शक्ति मिल गई। गांधी ने इन बिलों के सम्बन्ध में कहा था कि ''ये अन्यायपूर्ण हैं, स्वतंत्रता तथा न्याय के सिद्धान्तों और व्यक्तियों के बुनियादी अधिकारों के लिए, जिन पर संपूर्ण समाज तथा स्वयं राज्य की सुरक्षा आधारित है, घातक और विध्वंसकारी है। अत: हम संकल्प करते हैं कि यदि इन विधेयकों को कानून का रूप दिया गया तो जब तक इनको वापस नहीं लिया जाएगा, तब तक हम ऐसे कानूनों की सविनय अवज्ञा करते रहेंगे और साथ ही हम संकल्प करते हैं कि इस संघर्ष में हम पूरी निष्ठा के साथ सत्य का पालन करेंगे। किस प्रकार की हिंसा नहीं करेंगे।''[13] इन बिलों का विरोध करने हेतु प्रथम सभा 2 फरवरी, 1919 को मुम्बई में पण्डित मदन मोहन मालीवय की अध्यक्षता में हुई। गांधी इस सभा में उपस्थित नहीं हो सके। अत: उन्होने अपना पत्र भेजा। पत्र में लिखा कि ''धैर्य और

निश्चयपूर्वक बिल का विरोध करना जनता का कर्तव्य है। मैं यदि बीमार नहीं होता तो बिल के विरोध में आन्दोलन खड़ा करने में अवश्य ही सहभागी बनता।''14 इसके बाद अस्वस्थ अवस्था में ही गांधी ने सत्याग्रह के आयोजन हेतु सभी तैयारियां की। गांधी ने वाइसराय को रॉलेट विधेयकों को पारित करने से पूर्व विचार करने को कहा क्योंकि विलंब होने से सरकार को हानि नहीं होगी, बल्कि यदि वह लोकमत के सम्मुख झुक गई तो कटुता मिटेगी और उसकी वास्तविक प्रतिष्ठा बढ़ेगी। किन्तु इसके विपरीत 17 मार्च, 1919 को यह विधेयक पास हो गया। इसके विरोध में गांधी ने पुनः 30 मार्च और फिर 6 अप्रैल को देशव्यापी हड़ताल का आह्वान किया। बंबई में 'सत्याग्रह सभा' का गठन किया गया और सत्याग्रह नामक गैर-कानूनी पत्र का प्रकाशन आरंभ हो गया। दूसरा विधेयक पास होने से रोक लिया। इसी प्रकार जनवरी 1920 को दिल्ली में हुई खिलाफत कमेटी की बैठक में गांधी ने असहयोग का कार्यक्रम प्रस्तुत किया, जिसे कलकत्ता में अबुल कलाम आजाद की अध्यक्षता में हुई कॉन्फ्रेंस में स्वीकार कर लिया गया। यद्यपि असहयोग को आन्दोलन में परिवर्तित कर परिणाम अपेक्षा के अनुरूप प्राप्त नहीं हो सके तथापि भारतीय जनमानस में राजनीति एवं क्रान्ति की समझ पैदा करने में इसने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।

सत्याग्रह का दूसरा मार्ग है- सविनय अवज्ञा, जिसका प्रयोग गांधी ने आन्दोलन के रूप में किया था। इस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग हेनरी डेविड थोरो ने 1849 में अपने भाषणों में किया था। उनके अनुसार शुभ कार्य करने पर व्यक्तियों एवं संस्थाओं के साथ अधिकतम सहयोग एवं अशुभ कार्य करने पर असहयोग।[15] गांधी की सविनय अवज्ञा को थोरो से प्रभावित कहा जा सकता है परन्तु दोनों में मूल अन्तर यह था कि गांधी की सविनय अवज्ञा अहिंसक थी जबकि थोरो को हिंसा पर कोई आपत्ति नहीं थी। वास्तव में सविनय अवज्ञा एक शाश्वत सिद्धांत है, जिसका लोग जाने अनजाने जीवन के अनेक क्षेत्रों में प्रयोग करते हैं। ऐसा कोई शस्त्र है ही नहीं जो इस शाश्वत शक्ति को पराजित अथवा नष्ट कर सके। गांधी के अनुसार ''जब किसी व्यक्ति या राष्ट्र की आत्मा पर आघात पहुंचता है, तब सविनय अवज्ञा करना उसका अधिकार एवं धर्म बन जाता है।''

दिसम्बर, 1929 के लाहौर अधिवेशन में 'पूर्ण स्वराज्य' प्राप्त करने की घोषणा हो चुकी थी। इससे पहले मद्रास अधिवेशन 1927 ई. में भी ऐसा ही प्रस्ताव पारित हो चुका था, परन्तु अभी तक पूर्ण स्वराज्य के लक्ष्य को गांधी की सहमति और मार्गदर्शन नहीं मिला था। लाहौर अधिवेशन में इस कमी की पूर्ति हुई और महात्मा गांधी ने जवाहरलाल नेहरू के प्रस्ताव का समर्थन करते हुए स्पष्ट रूप से कहा कि ''गत वर्ष कलकत्ता अधिवेशन में स्वीेत निर्णय पर अमल करते हुए कांग्रेस घोषणा करती है कि अब स्वराज्य का मतलब पूर्ण स्वाधीनता से होगा और कांग्रेस आशा करती है कि सभी कांग्रेस जन भारत को पूर्ण स्वाधीन बनाने का प्रयास करेंगे।''[16] स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए कौन सी रणनीति ठीक रहेगी? इसका निर्णय करने का अधिकार कार्यकारिणी ने गांधी को दे दिया। वे स्वतन्त्रता संग्राम के डिक्टेटर बना दिये गये। इसी बीच गांधी भी किने दिनों तक विचार करते रहे कि हमें स्वतंत्रता संग्राम किस तरह आरम्भ करना है? अंत में उन्होंने अपने निर्णय को बताते हुए कहा कि ''हमारी मान्यता है कि स्वतंत्रता प्राप्ति का रास्ता हिंसा से होकर नहीं गुजरता। अतः जहां तक संभव होगा स्वैच्छिक ढंग से ब्रिटिश सरकार से अपने संबंधों को खत्म करने की तैयारी करेंगे। हम नागरिक अवज्ञा के लिए तैयार होंगे, जिसमें करों का भुगतान न करना भी शामिल है। हमारी निश्चित धारणा है, भड़काए जाने की स्थिति में भी हम हिंसा का सहारा न लेकर स्वेच्छा से दी जाने वाली सहायता बंद कर दें और करों की आदयगी रोक दें, तो इस अमानवीय शासन का अंत निश्चित है।''[17] इसके निमित्त उन्होंने तत्कालीन वायसराय लार्ड इरविन को एक पत्र लिखा जिसमें पहले से प्रेषित ग्यारह सूत्री मांग-पत्र को स्वीकार करने का आग्रह किया गया था। यदि उसे स्वीकार न किया गया तो उन्हें सरकार के कानून को ऐसे तरीकों से तोड़ना होगा जो किसानों को भी मंजूर होगा। किन्तु जब वायसराय ने यह मांग-पत्र स्वीकार नहीं किया तब सत्याग्रह करना अनिवार्य हो गया। इसके लिए उन्होंने सर्वप्रथम नमक कानून तोड़ने का निश्चय किया। उनका मानना था ''पानी से पृथक् नमक कोई चीज नहीं है जिस पर कर लगाकर राज्य करोड़ों को भूख से मार सकती है। बीमार असाहय और विकलांगों को पीड़ित कर सकती है। इसलिए यह कर अत्यंत अमानवीय, अविवेकपूण ा है जिसका उपयोग मानवता के विरुद्ध किया जाता है।''[18]

गांधी को साबरमती आश्रम के अपने 78 सहयोगियों के साथ अहमदाबाद मुख्यालय से गुजरात के गांवों में होते हुए 240 मील की यात्रा करनी थी। उनके इस कार्य के सहयोगियों में भारत के सभी क्षेत्रों और धर्मो के लोग शा. मिल थे। दांडी में समुद्र के किनारे पहुंचकर उन्हें नमक कानून तोड़ना था। 5 अप्रैल 130 को वे अपने लक्ष्य स्थान दाण्डी पहुंचे। इस समय तक सत्याग्रहियों की संख्या हजारों तक पहुंच गई। 6 अप्रैल को प्रातः, जिस दिन 1919 के प्रथम सत्याग्रह की वर्षगांठ थी, गांधी ने स्वयं अपने हाथों से नमक बनाकर कानून को तोड़ा। इसके बाद तो सभी ब्रिटिश कानूनों को तोड़ने की होड़ सी लग गई। तमिलनाडु में तंजौर के समुद्र तट पर चक्रवतएँ राजगोपालाचारी ने त्रिचिनापल्ली से वेदारण्यम की नमक यात्रा प्रारम्भ की और 30 अप्रैल को जब उनको गिरफ्तार किया गया तो उनके

शिविर में इतने अधिक लोग एकत्र हो चुके थे कि उनकी मदद से सत्याग्रह काफी समय तक चलता रहा। मालाबार में वैकम सत्याग्रह के नायक ने नमक कानून तोड़ने के लिए कालीकट से पयान्नूर तक की यात्रा की।[19] मध्य प्रदेश व बम्बई प्राप्त में जंगल कानून का विरोध हुआ। उत्तर प्रदेश में गोविन्द बल्लभ पंत तथा संपूर्णानन्द ने कर बन्दी आन्दोलन का नेतृत्व किया। यह आन्दोलन काफी व्यापक एंव शक्तिषाली बन चुका था। देश के अनेक नेता सत्याग्रह के पहले ही पकड़ लिए गए। इनमें सरदार पटेल व बंगाल के सुप्रसिद्ध नेता सेन गुप्ता का नाम विशेष उल्लेखनीय है। पंडित नेहरू को 14 अप्रैल 1930 को पकड़ लिया और छह मास की सजा दी गई। दमनचक्र चलने पर भी आन्दोलन रूक नहीं रहा था। नेताओं की गिरफ्तारी ने आग में घी का काम किया। नमक सत्याग्रह के साथ बन्दी आन्दोलन भी तेजी से भड़क उठा। अन्य स्थानों पर भी घोर दमन चल रहा था। दक्षिण में आंध्र में तो भीड़ पर इसलिए गोली चलाई गई कि सत्याग्रही गांधी टोपी धारण किये हुए थ। 'एल्लोष' नामक स्थान पर इस गोली काण्ड से कई लोग मारे गये। सरकार तो मानो कांग्रेस पर टूट पड़ी। उसे गैर-कानूनी घोषित कर दिया गया। नये-नये अध्यादेशो द्वारा दमन चक्र चला। प्रेस का गला बुरी तरह से घोंट दिया गया। सभी नेता जेलों में ठूंस दिये गए। गांधी ने इस दमन का उल्लेख करते हुए लिखा है ''भारत मानो विशाल जेल खाना बन गया है।''[20]

आन्दोलन से सम्पूर्ण देश एकजुट हो गया था। भारी दमन के बाद भी यह पूरे एक वर्ष तक पूरी ताकत से चलता रहा। गांधी कह अहिंसा को इसमें पूरी सफलता मिली बिना किसी हिंसक प्रतिषोध के देशभक्त देश की आजादी के लिए अपनी बलि देते रहे। महिलाओं ने इसमें सक्रिय योगदान दिया। यह आन्दोलन मानवता की दानवता पर स्पष्ट विजय थी। सरकार दमन करके भी आन्दोलन को दबा न सकी तो वह समझौते का रास्ता तलाषने लगी और अपने ऐजेन्ट गांधी के पास भेजने लगी। इसकी परिणति हमें गांधी-इरविन समझौते के रूप में देखने को मिलती है। इस समझौते पर तत्कालीन क्रान्तिकारियों एवं नेताओं की अलग-अलग प्रतिक्रियाएं देखने को मिलती हैं। डॉ. पट्टाभिसीतारमैया ने कांग्रेस के इतिहास में इस समझौते का उल्लेख करते हुए कहा है कि ''संसार के सारे बड़े साम्राज्य के प्रतिनिधि के साथ एक भारतीय नेता का बराबरी के नाते से समझौता करना, आधुनिक इतिहास की महत्वपूर्ण घटना है। कुछ अंषों में यह भारतीय राष्ट्रवाद की विजय है।''[21] जबकि जवाहरलाल नेहरू ने इस समझौते को स्वतंत्रता संग्राम का युद्ध विराम ही माना था। गोलमेज सम्मेलन से वापस लौटने के बाद गांधी का ध्यान हरिजनोद्धार पर गया। उन्होंने 1934 तक आते-आते सविनय अवज्ञा आन्दोलन वापस ले लिया।

सामूहिक सत्याग्रह के स्थान पर व्यक्तिगत सत्याग्रह की घोषणा को काफी जन समर्थन प्राप्त हुआ किंतु इसका उद्देश्य दरअसल अंतिम रूप से सत्याग्रह आन्दोलन को समाप्त कर देना ही था। गांधी के अनुसार ''एक समय में केवल एक ही व्यक्ति को सत्याग्रह करना चाहिए। वर्तमान परस्थिति में फिलहाल मुझे ही सत्याग्रह की जिम्मेदारी उठ. ानी चाहिए।''[22] व्यक्तिगत सत्याग्रह को आरम्भ करने के पीछे उनकी यह मंषा भी थी कि सरकारी जुल्म का सामना करने के लिए व्यक्ति में स्वयं भी साहस होना चाहिए। उन्होने अपने एक वक्तव्य में अपनी राय व्यक्त करते हुए कहा था कि ''मेरे विचार से जनता अभी तक सत्याग्रह का संदेश ग्रहण नहीं कर पाई है क्योंकि यह जनता तक पहुंचते-पहुचते अषुद्ध हो जाता है। मेरे लिए अब यह बात साफ हो गई है कि आध्यात्मिक अस्त्रों के इस्तेमाल का तरीका जब गैर-आध्यात्मिक माध्यमों से बताया जाता है तो वे अपनी ताकत खो बैठते हैं। तमाम लोगों के निष्क्रिय सत्याग्रह से शासकों का हृदय नहीं पसीजा है।''[23] व्यक्तिगत सत्याग्रह का शुभारम्भ करने वाले उनके प्रिय शिष्य विनोबा भावे थे। बाद में नेहरू समेत कांग्रेस के अन्य नेता भी इसमें सम्मिलित हो गये और सरकार द्वारा बन्दी बनाए गए। यह सत्याग्रह 1940 तक बराबर चलता रहा।

इसी दौरान 1937 में कांग्रेस ने छह प्रान्तों में अपने मंत्रिमंडल गठित किए थ। इनमें मद्रास, मध्यभारत, बम्बई, उड़ीसा, संयुक्त प्रांत और बिहार सम्मिलित थे। बाद में चलकर असम एवं पश्चिमोत्तर प्रांत में भी कांग्रेस ने अपने मंत्रिमण्डल गठित किए। सरकार में शामिल होने पर गांधी ने 7 अगस्त 1937 के हरिजन में इसका अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखा था कि ''इस काम को सहजता में लेना चाहिए गंभीरता से नहीं। यह कांटों का ताज है। इससे कोई गौरव हासिल होने वाला नहीं है। ये इसलिए स्वीकार किए गए हैं ताकि हम यह जान सकें कि जिस गति से हम अपने लक्ष्य की तरफ बढ़ रहे हैं, उसमें इनसे तेजी आती है या नहीं। इससे पहले उन्होंने कांग्रेसजनों को सलाह दी थी कि 1935 के अधिनियम का ''इस तरह उपयोग करना चाहिए जिसकी उनको उम्मीद नहीं है तथा इकसे उस रूप में इस्तेमला रने से अपने को बचाना चाहिए। जिस रूप में वे चाहते हैं।''[24] यद्यपि कांगेस के मंत्रिमण्डल के पास साम्राज्यवादी राज्य के मूल स्वरूप में परिवर्तन करने का कोई कानूनी अधिकार नहीं था तथापि अपने अधिकारों में रहकर उन्होंने अनेक ऐसे कानूनों का निर्माण किया जो भारतीय जनता के लिए लाभकारी थे। किन्तु कांग्रेस मंत्रिमण डलों की समझ में यह नहीं आ रहा था कि जहां पर उनकी अपनी ही जनता विरोध में खड़ी हो, उस स्थिति से कैसे निपटा जाए। उन्होंने मध्यस्थ की भूमिका निभाने की कोषिष की जो कि उत्तर प्रदेश, बिहार में सफल रही

परन्तु बंबई में उन्हें असफलता ही हाथ लगी। इस प्रकार के अनेक घटनाक्रम सामने आने पर गांधी ने यह विचार दिया कि ''हम लोग अंदर से कमजोर होने लगे हैं।'' 1938 में हरिजन में गांधी ने लिखा था कि ''यदि कांग्रेस से अवैध और अनियमित तत्वों की सफाई नहीं की जायेगी, तो आज जो इसकी शक्ति है, वह खत्म हो जायेगी और जब देश को वास्तविक संघर्ष का सामना करना होगा तब कांग्रेस लोगों की आशाओं को पूरा नहीं कर सकेगी।''[25] वास्तव में गांधी मानते थे कि जिस समस पर जनसंघर्ष न चल रहा हो उस समय पर आंदोलन का ढीला पड़ना तथा कार्यकर्ताओं में नैतिकता के अभाव जैसी कमजोरियों का होना स्वाभावित और अनिवार्य था। इसलिए उन्होंने सत्ता छोड़ने और सत्याग्रह के अगले चरण की तैयारी की सलाह दी।

23 मार्च 1942 को स्टेफर्ड क्रिप्स भारतीय नेताओं से सम्पर्क करने हेतु दिल्ली पहुंचे। क्रिप्स द्वारा दिये गये प्रस्तावों पर भारतीय नेता मोहित न हो सके। वे समझते थे कि विन्स्टन चर्चिल स्वप्न में भी भारत को स्वतंत्रता प्रदान नहीं करेंगे। क्रिप्स मिशन भेजने का एक मात्र उद्देश्य जापान के विरुद्ध भारतीय जनता की सहायता प्राप्त करना था। इसके साथ ही भारतीय नेताओं को गुमराह करना ताकि वे किसी भी आन्दोलन की घोषणा न कर सकें क्योंकि ऐसा होने पर इंग्लैण्ड दोहरे संकट में पड़ जाता। प्रस्ताव में जो स्वतंत्रता की बात कही गई थी वह युद्ध के बाद की थी। अतः गांधी ने इस प्रस्ताव को आउटडेटेड चौक की संज्ञा देकर इसे अस्वीकार कर दिया। वे समझ रहे थे कि अब सीधी अंगुली से घी नहीं निकल सकता। वे अब अहिंसात्मक आन्दोलन क्षेत्र को अधिक व्यापक बनाने पर विचार करने लगे। उनके निकट सहयोग एवं शिष्य महादेव देसाई व मशरूवाला ने भी अहिंसा के क्षेत्र के क्षेत्र को अधिक व्यापक बनाने पर जोर दिया। उनके अनेसार ''अब सरकारी नौकरियों के बहिष्कार व कर बन्दी आन्दोलन से ही काम नहीं चलेगा। हमें शत्रुओं के सभी कार्यक्षेत्र व संस्थानों को भंग करने का कार्य भी अहिंसा के दायरे में लाना पड़ेगा।''[26] राजेन्द्र बाबू ने अपने अंग्रेजी ग्रन्थ 'महात्मा गांधी तथा बिहार' में लिखा है कि ''उन दिनों गांधी जी के लेख आग बरसा रहे थे और सारा देश महान घटनाओं की प्रतीक्षा कर रहा था।''[27] भारत की आजादी के सम्बन्ध में ब्रिटिश सरकार को अंतिम चेतावनी देने के लिए 4 व 5 अगस्त को बम्बई में कांग्रेस कार्य समिति की बैठक हुई। इसमें 'अंग्रेजों भारत छोड़ो' नामक ऐतिहासिक प्रस्ताव पारित हुआ। 7 व 8 अगस्त को कांग्रेस का अधिवेशन ग्वालिया टैंक के विशाल मैदान में आरम्भ हुआ। गांधी ने सम्बोधित करते हुए कहा कि ''यहां एक छोटा सा मंत्र है जो आपको देता हूं, इसे अपने हृदय पटल पर अंकित कर लें। वह मंत्र है ''हम करेंगे या मरेंगे'' या तो हम भारत को स्वतंत्र करा लेंगे या इसके प्रयत्न में अपने जीवन की बलि दे देंगे। हम गुलामी देखने के लिए जिन्दा नहीं रहेंगे। हर एक स्त्री-पुरुष को जीवन की इस भावना के साथ जीना चाहिए कि वह स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए जीता है और समय आने पर इस महान उद्देश्य के लिए मरने को तैयार है। अपनी अन्तरात्मा को साक्षी रखकर, ईश्वर के सामने यह प्रतिज्ञा ले लें कि आप तब तक चौन न लेंगे जब तक कि स्वतंत्रता की प्राप्ति न हो जाए और इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए अपने प्राण-न्यौछावर करने को तैयार रहेंगे। जो मरना जानते हैं उन्होंने जीने की कला सीखी है। आज से तय करें कि आजादी लेनी है, नहीं लेनी है तो मेरेंगे। आजादी कायरों के लिए नहीं है।'' वे आंदोलन में कभी भी हिंसा के पक्षधर नहीं रहे थे। इस आंदोलन में जो भी हिंसा हुई, ब्रिटिश सरकार ने उसका पूरा दोष गांधी के ऊपर डाल दिया। आन्दोलन के आरम्भ में ही सभी प्रमुख नेताओं को नजरबन्द कर दिया गया था। फिर भी जनता ने बिना नेतृत्व और कार्यक्रम के जो निष्काम राष्ट्र-प्रेम प्रस्तुत किया वह साहस हमारे स्वतन्त्रता संग्राम में स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य है।

राष्ट्र को गुलामी से आजादी दिलवाने के लिए उन्होंने अनेक रचनात्मक कार्यो एवं आन्देालनों के द्वारा प्रयास किया। किन्तु उनके प्रत्येक कार्य के मूल में सत्य एवं अहिंसा का विचार ही समाहित था। गांधी वास्तव में एक अहिंसक समाज की स्थापना करना चाहते थे। वे कहते थे कि ''अहिंसक समाज की स्थापना करनी है तो शांति सेना का संगठन किये बिना काम नहीं चलेगा और यह कार्य तप और संयम साधे बिना कदापि संभव नहीं है। जहां समाज की संरचना अहिंसा पर होती है, वहां गोला-बारूद की जगह तप और संयम लेते हैं और उन्हें काम मे लाने वाले सिपाही समाज की रक्षा करते हैं। दुनिया ने अभी तक ऐसा धर्म नहीं अपनाया है।''28 विरोध प्रदर्शन हेतु वे अहिंसक धरनों के हिमायती थे। उनके अनुसार अहिंसक धरना देने वाले का यह कर्तव्य है कि वह जनमत को जगाये, उपयुक्त वातावरण निर्मित करे तथा सामने वाले व्यक्ति को चेतावनी दे तथा उसका हृदय परिवर्तन कर दे। अहिंसक विरोध का मुख्य लक्ष्य यह है कि अन्याय करने वाले व्यक्ति या समुदाय को शांतिपूर्ण उपायों द्वारा उचित मार्ग पर लाया जाय। इसके लिए सत्याग्रही उस व्यक्ति या समुदाय को किसी प्रकार का कष्ट न देकर स्वयं दुःख सहन करता है। उनके द्वारा किये सभी आन्दोलन एवं रचनात्मक कार्य इसी सिद्धान्त पर आधारित दिखते हैं, जिन्होंने भारतीय स्वाधीनता के पथ पर अत्यन्त प्रभावी भूमिका निभायी है।

Author's Declaration:

The views and contents expressed in this research article are solely those of the author(s). The publisher, editors, and reviewers shall not be held responsible for any errors, ethical misconduct, copyright infringement, defamation, or any legal consequences arising from the content. All legal and moral responsibilities lie solely with the author(s).

सन्दर्भ–

1. शास्त्री, पं. चतुरसेन, सत्याग्रह और असहयोग, गांधी पुस्तक भण्डार, बम्बई, 1978, पृ. 5
2. पुरोहित, गोवर्धनलाल, स्वतन्त्रता संग्राम का इतिहास, राजस्थान प्रकाशन, जयपुर, पृ. 229
3. वही, पृ. 230
4. वही, पृ. 230
5. यंग इंडिया, 14 जनवरी, 1920, पृ. 5
6. गांधी, सत्याग्रह इन साउथ अफ्रीका, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, 1950, पृ. 179
7. धर्मपाल, काटदरे, इन्दुमति (अनुवादक), गांधी को समझे, पुनरुत्थान ट्रस्ट्र, अहमदाबाद, 2007, पृ. 85
8. वही, पृ. 91
9. राय, डॉ. सत्या एम., भारत मे उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली, 1990, पृ. 242
10. वही, पृ. 242; टोंक, बी. एम., नॉन कॉपरेशन मूवमेंट इन इंडियन पॅलिटिक्स 1919–1924, संदीप प्रकाशन, दिल्ली, 1978
11. सिंह, दशरथ, गांधीवाद को विनोबा की दने, बिहार ग्रन्थ अकादमी, पटना, 1975, पृ. 494
12. राय, डॉ. सत्या एम., पूर्वोक्त, पृ. 243
13. वही, पृ. 244–245
14. धर्मपाल, पूर्वोक्त, पृ. 94
15. प्रसाद, महादेव, शास्त्री विष्णुकांत (अनु.) महात्मा गांधी का समाज दर्शन, हरियाणा साहित्य अकादमी, चंडीगढ़, 1989, पृ. 128
16. पुरोहित, गोवर्धन लाल, पूर्वोक्त, पृ. 320
17. वही, पृ. 322
18. चन्द्र, बिपिन एवं अन्य, भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली, 2015 पृ. 253
19. वही, पृ. 256
20. पुरोहित, गोवधर्न लाल, पूर्वोक्त, पृ. 327
21. वही, पृ. 330
22. राय, डॉ. सत्या एम., पूर्वोक्त, पृ. 282
23. वही, पृ. 282
24. चन्द्र, बिपिन एवं अन्य, पूर्वोक्त, पृ. 310–311
25. वही, पृ. 328
26. पुराहित, गोवर्धन लाल, पूर्वोक्त, पृ. 356
27. वही, पृ. 357
28. गांधी, मोहनदास करमचंद, अनुवादक चौधरी, रामनारायण, सत्याग्रह आश्रम का इतिहास, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, 1948, पृ. 14

Cite this Article-

'*डॉ0 राजपाल सिंह*', '*सत्याग्रह और स्वतंत्रता आंदोलन: वैचारिक प्रेरणा और सामाजिक प्रभाव*', Shodhpith International Multidisciplinary Research Journal, ISSN: 3049-3331 (Online), Volume:1, Issue:03, May-June 2025.

Journal URL- https://www.shodhpith.com/index.html

Published Date- 20 June 2025

DOI-10.64127/Shodhpith. 2025v1i3006